दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2500 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 7

साधु-स्तुति

ऐसे जैनी मुनि महाराज, सदा उरमी बसो ॥टेक॥
जिन समस्त परद्रव्यनिमाहीं अहंबुद्धि तजि दीनी।
गुन अनंत ज्ञानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी ॥1॥
जे निजबुद्धिपूर्व रागादिक, सकल विभाव निवारैं।
पुनि अबुद्धिपूर्वक नाशन को, अपनी शक्ति सम्हारैं ॥ऐसे०2॥
कर्म शुभाशुभ बंध उदय में, हर्ष-विषाद न राखैं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, भाव सुधारस चाखैं ॥ऐसे०3॥
पर की इच्छी तजि निजबल सजि, पूरब कर्म खिरावैं।
सकल कर्मतैं भिन्न अवस्था, सुखमय लखि चित चावैं ॥ऐसे०4॥
उदासीन शुद्धोपयोगरत सबके दृष्टा ज्ञाता।
बाहिजरूप नगन समताकर, 'भागचंद' सुखदाता ॥ऐसे०5॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

नवम्बर : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (343) एक अंक 35 पैसा [कार्तिक : 2500

श्री पंडित दीपचंदजी साधर्मीकृत

ज्ञान-दर्पण

[अंक 304 से आगे]

(सवैया इकतीसा)

परम अखंड ज्ञानमाहिं ज्ञेय भासत है, ज्ञेयाकार रूप विवहार नै बतायौ है।
निह्चै निरालो ज्ञान ज्ञेयसौं बखान्यौ जिन, दरसन निराकार ग्रंथमैं गायौ है।
बीरज अनंतसुख सासतौ स्वरूप लीएँ, चतुष्टै अनंत वीतराग देव पायौ है।
जिनकौं बखानतही ऐसे गुण प्रापति ह्वै, यातैं जिनराजदेव दीप उर भायौ है ॥96॥

(दोहा)

सकल करमसौं रहित जो गुण अनंत परधान। किंच ऊन परजाय है, वहै सिद्ध भगवान ॥97॥
गुण छतीस भंडार जे, गुण छतीस हैं तास। निज सरीर परजाय है, आचारज परकास ॥98॥
पूरवांग ज्ञाता महा, अंगपूरव गुण जानि। जिह सरीर परजाय है, उपाध्याय सो मानि ॥99॥
आठबीस गुणकौं धरैं आठबीस गुणलीन। निज सरीर परजाय है, महासाधु परवीन ॥100॥

(सवैया इकतीसा)

गुण परजाय जुत द्रव्य जीव जाके गुण, है अनंत परजाय परपरणति।
परमाणू द्रव्यरूप स्पर्श रस गंध, गुण परजाय षट्वृद्धिहानिवर्ति है।
गति स्थितिहेतु द्रव्य गति-स्थिति गुण-परजाय, वृद्धि-हानि धर्म-अधर्म सु-गति[1] है।
अवगाह बरतना हेतु दोउ दरब में, ये ही गुण-परजाय वृद्धि-हानि गति है ॥101॥
संज्वल कषाय स्थूल उदै मोह सूक्षम के, स्थूल मोह क्षय तथा उपशम कह्यो है।
याही करि कारणतैं संजम को भाव होय, छट्ठा गुणस्थानमाहिं महा लहिलह्यो है।
ताकौं मिथ्यामती केउ मूढजन मानतु है, नय की विवक्षा भेद कछू नाहिं गह्यो है।
सहज प्रत्यक्ष शिव-पंथ मैं निषेध कीने, यहाँ न विरोध कोउ रंच हू न रह्यो है ॥102॥

---

1. परिणामी है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

नवम्बर : 1973 ☆ कार्तिक : वीर नि० सं० 2500, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 7

शांति का अनुभव

जीव अनंतकाल से दु:खी हो रहा है। वह दु:ख पर के कारण नहीं, किंतु अपने स्वभाव को भूलकर परभाव से वह दु:खी हो रहा है-ऐसा जिसे अंतर में दु:ख लगता है, वह सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। उसे किसी न किसी प्रकार से सत् देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त प्राप्त हो जाता है, और उनके बताये हुए मार्ग का वह जीव उत्साह से आदर करता है, वह मात्र बाह्य निमित्त में न अटककर गुरु के उपदेश-स्वाध्यायादि द्वारा अंतर में सुख-प्राप्ति का रास्ता ढूँढ़ता है, जैसे-जैसे मार्ग मिलता जाता है, वैसे-वैसे उसका प्रमोद बढ़ता जाता है; अभी वास्तविक शांति मिली नहीं है, फिर भी शांति का अनुभव होता है। जिसप्रकार तृषातुर जीव को जल प्राप्त होने के पहले भी सरोवर के किनारे आने से जल की शीतलता का वेदन होता है, उसीप्रकार सम्यक्त्वसन्मुख जीव शांति के समुद्र के किनारे आया है, उसको उस प्रकार की शांति का अनुभव अपने में होता है।

गुरुदेव द्वारा दी गई नूतन वर्ष की भेंट

''अहा, सम्यक्त्वरूपी सोने का सूर्य उदित हुआ!''

नूतनवर्ष के मंगल-प्रभात में चैतन्य की अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक गुरुदेव ने नवदेवों का स्मरण करके आनंदरस युक्त जो उत्तम भेंट दी, वह आत्मधर्म द्वारा आप तक पहुँचाते हुए हर्ष होता है। —संपादक

नूतनवर्ष के मंगल प्रभात में गुरुदेव ने मंगलरूप में सर्वप्रथम नव देवों का स्मरण किया—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनालय, जिनचैत्य, जिनवाणी तथा जिनधर्म—यह नव देव हैं। यह सब वीतरागस्वरूप हैं, वीतरागता के प्रतिपादक हैं और वीतरागभाव द्वारा ही उनकी सच्ची पहिचान होती है।

आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय ज्ञान है; अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा जानने का उसका स्वभाव है तथा वह स्वयं अतीन्द्रियज्ञान से ही ज्ञात होता है; इसप्रकार अतीन्द्रिय (स्वसंवेदन प्रत्यक्ष) ज्ञानपूर्वक ही अरिहंत-सिद्ध-जिनवाणी आदि का सच्चा ज्ञान होता है।—यह बात प्रवचनसार की 172वीं गाथा में बड़े अच्छे ढंग से बतलायी गयी है; स्वामीजी बारंबार उसका उल्लेख करते हैं और मुमुक्षु जीव को उसका रहस्य विशेषरूप से समझनेयोग्य है।

इसीप्रकार समयसार की 47 शक्तियों में से 12वीं प्रकाशशक्ति का उल्लेख करके बारंबार कहते हैं कि स्वसंवेदनप्रत्यक्ष होने का आत्मा का स्वभाव है। साधक के मति-श्रुतज्ञान में भी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से आत्मा को जानने की शक्ति है। अहा, ऐसा स्वसंवेदन हुआ, वह भी अशरीरी है; अतीन्द्रिय आनंदसहित है और वह वीरप्रभु का मार्ग है।

अहा, भगवान महावीर के मोक्ष का यह ढाई हजारवाँ वर्ष है; भगवान का मार्ग तो वीतरागभाव में है। प्रभु का वीतरागमार्ग जयवंत है। ऐसे मार्ग को जानकर सम्यग्दर्शन की ऐसी

अप्रतिहत आराधना करना चाहिये कि वर्तमान में क्षायोपशमिक होने पर भी बीच में भंग पड़े बिना क्षायिक सम्यक्त्व हो। इसप्रकार क्षायिक के साथ वाला सम्यक्त्व भी क्षायिक जैसा ही है—'यह बात भगवान की वाणी में आयी है।' (पूज्य बहिनश्री के जातिस्मरण में।) ऐसी आराधना, वह सुप्रभात है। मिथ्यात्व अंधकार का नाश करके चैतन्य का जो सम्यक्त्व-प्रकाश प्रगट हुआ, वह अपूर्व मंगल-सुप्रभात है। 'अहा! सम्यक्त्वरूपी सोने का सूरज उदित हुआ!'

आत्मा अमृतस्वरूप सच्चिदानंद विज्ञानघन है; वह आनंद का विशाल प्रवाह है। 'अमृत' अर्थात् एक तो मरे नहीं, कभी जिसका नाश न हो ऐसा; और दूसरे आनंद के मिष्ट स्वादरूप अमृत, उससे आत्मा भरपूर है। इसप्रकार आत्मा परम अमृतस्वरूप है और शरीर तो मृतक-जड़ कलेवर है; उससे विज्ञानघन आत्मा भिन्न है। ऐसे आत्मा को दृष्टि में लेने पर झर-झर करती अमृतधारा बरसती है।—यह सुप्रभात है। सम्यग्दर्शन, वह सुप्रभात है और केवलज्ञान, वह सर्वोत्कृष्ट सुप्रभात है। ऐसा सुप्रभात जगत को मंगलरूप है।

सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा साक्षात् हुआ; वहाँ धर्मी जानता है कि मेरी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि समस्त पर्यायों में मेरा आत्मा ही तन्मय है; सम्यक्त्वादि पर्यायों में ध्येयरूप से आत्मा ही विराजमान है; आत्मा ही तन्मय होकर उन पर्यायोंरूप से परिणमित हुआ है। अनंत गुणों का चैतन्यपिण्ड जो प्रतीति में आया, वह सम्यग्दर्शनपर्याय स्वयं ही चैतन्यपिण्ड है। शुद्धपर्याय को भी चैतन्यपिण्ड कहा है।

—इसप्रकार मंगल प्रभात में नव देवों का स्मरण किया और स्वसंवेदनप्रत्यक्ष आनंद-अमृत से भरपूर भगवान चैतन्यदेव को याद किया, वह मंगल है; उसकी रुचि-ज्ञान-अनुभूति करना, वह चैतन्य का अपूर्व सुप्रभात है।

भीतर जा

दुनिया में जो हो रहा है, उसे होने दे, देह में जो हो रहा है, उसे होने दे—परंतु तू भीतर जा... एक बार अंतरस्वरूप को लक्ष में लेकर उसके भीतर जा... भीतर महा आनंद है... ज्ञानचेतना का महा विलास भीतर है... भीतर जाने पर... फिर तुझे बाहर आने की इच्छा नहीं होती।

आनंद झरता सुप्रभात

नूतनवर्ष के मंगल प्रभात में चैतन्य की अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक स्वामीजी ने नव देवताओं का स्मरण करके जो उत्तम भेंट मुमुक्षुओं को दी, वह आप पढ़ चुके हैं... पढ़कर प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् प्रवचन में समयसार का सुप्रभात कलश (268वाँ) पढ़ते हुए चैतन्य के आनंद की मधुर वर्षा करते हुए गुरुदेव ने कहा कि—

आत्मा ज्ञानानंदस्वभावी हैं; उसके स्वसंवेदन से जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ मिथ्यात्व-रात्रि का नाश करके मंगल आनंदप्रभात प्रगट हुआ और पश्चात् केवलज्ञान होने पर तो आनंद का महा सुप्रभात प्रगट हुआ; चैतन्यतत्त्व पर्याय में चमचमाता हुआ प्रगट हो उठा। जिसप्रकार फुलझड़ी में से तेज की चिंगारियाँ झरती हैं, उसीप्रकार सम्यक्त्व की चिंगारियों द्वारा चैतन्यपिण्ड में से आनंद का रस झर-झर झरता है। लोक में दीपावली के दिन बारूद के फटाके छोड़ते हैं, उनकी आवाज से तो अनेक जीव मर जाते हैं (और उसमें तो पापबन्ध होता है), परंतु यहाँ तो आत्मा की दीपावली में (पर्याय को अंतरोन्मुख करके) अंतर्मुख होकर चैतन्य की चिंगारी लगाने से जो सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान का फटाका छूटा, वह तो मिथ्यात्वादि को फोड़कर भीतर से चैतन्य को जागृत करके आनंद प्राप्त कराता है। यही सच्ची अहिंसक दीपावली है। आत्मा में ऐसी वीतरागदशारूप आनंदमय वर्ष लगा, उसमें चैतन्य का सुनहरा सूर्य उदित हुआ और सुप्रभात हो गया। उसका अब कभी अस्त नहीं होगा।

जिसमें सम्यक्त्व के सुनहरे सूर्य से जगमगाता हुआ आत्मा सुशोभित होता है, वही सच्चा सुप्रभात है। उसमें जो ज्ञानचक्षु खुले, वे फिर कभी मुँदेंगे नहीं। यह तो वीतरागी जिनवाणी के अमोघ बाण हैं, यह बाण जिसे लग गये, उसका मोह छिद जाता है और अंदर से आनंदमय भगवान प्रगट होता है।

सद्गुरु ने मारे शब्दों के बाण... अंतर में खिला आत्म-भगवान।

जैन संतों की वाणी वीतरागता की पोषक है, वह राग की एकता को तोड़कर चैतन्य के पाताल में प्रविष्ट हो जाती है और अंतर से आनंद की गंगा उछलकर बाहर पर्याय में आनंद प्रवाहित कर देती है। वाह रे वाह! वीतरागी संतों की वाणी! ऐसी वीतराग की वाणी को भी नवदेवों में गिना है; वह पूज्य है।

वीतराग वाणी चैतन्यपिण्ड आत्मा को प्रकाशित करती है। चैतन्य का ज्ञान अकेले नहीं होता, उसके साथ अतीन्द्रिय आनंदादि अनंत भाव होते हैं। ऐसा आनंद झरता सुप्रभात धर्मी के अंतर में उदित हुआ, वह स्याद्वाद से सुशोभित है और चैतन्य की अपार महिमा से भरपूर है। आत्मा का आनंदरस ऐसा अद्भुत है कि एकबार उस आनंदरस का पान किया, वहाँ मोक्ष का वर्ष प्रारंभ हो गया, मोक्ष का सुप्रभात उदित हुआ; वह अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करके सादि-अनंतकाल सिद्धरूप से विराजमान रहेगा।

साधक कहता है कि अहा, चैतन्य का ऐसा अद्भुत स्वभाव मुझमें उदयरूप हुआ है, तो फिर अब अन्य भावों से (बंध-मोक्ष के विकल्पों से) मुझे क्या काम है? वह आनंदमय चैतन्यप्रकाश मुझे सदा स्फुरायमान रहे।

आगम अर्थात् अक्षरज्ञान, वह आत्मा के अक्षर-अक्षय आनंदस्वरूप को बतलाता है। ऐसे अक्षय आत्मा का ज्ञान, वह भाव-आगम है। भाव-आगम अर्थात् अतीन्द्रिय आत्मा का ज्ञान; उसमें आनंद झरता है। आनंद रहित ज्ञान कभी होता ही नहीं। आत्मा का जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञानप्रभात आनंद से भरपूर है। ऐसा आनंदमय सुप्रभात जगत में मंगलरूप है।

स्वभावप्रभा का पुंज आत्मा चैतन्य-किरणों से शोभायमान है। मति-श्रुतज्ञानादि अनेक निर्मलपर्यायें आत्मा की एकता को खंडित नहीं करतीं, परंतु वे तो आत्मा के एकत्व-स्वभाव का अभिनंदन करती हैं। अनित्य पर्यायें नित्यस्वभाव का अभिनंदन करती हैं—उसके सन्मुख होकर उसमें तन्मय होती हैं वहाँ चैतन्यसूर्य आत्मा सदा उदयमान है। अनंत ज्ञानादि चतुष्टय से भरपूर स्वभाव में दृष्टि करने से सुप्रभात उदित हुआ, वह मंगल है और केवलज्ञान वह सर्वोत्कृष्ट मंगल सुप्रभात है।

[नूतन वर्ष की मंगल भेट के रूप में स्वामीजी ने अपने हाथ से मुमुक्षुओं को

'समाधितंत्र' पुस्तक दी थी... मानों परम वात्सल्य से स्वामीजी ने सम्यक्बोधि सहित समाधि का ही आशीर्वाद दिया।]

केवलज्ञान सुप्रभात जगत में सत्पुरुषों को वंद्य है और जगत को मंगलरूप है। अंतर्मुख होकर शुद्धचैतन्यतत्त्व की भावना से मोह को निर्मूल करके समस्त राग-द्वेष का क्षय करने पर सर्वोत्कृष्ट ज्ञानज्योति प्रगट होती है, उसकी अत्यंत महिमा करते हुए श्री पद्मप्रभस्वामी नियमसार (कलश 20) में कहते हैं कि अहो, भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल वंद्य है, जगत को मंगलरूप है।

ऐसा सुप्रभात कैसे प्रगट हो?—तो कहते हैं कि ज्ञान ही उपाय है और ज्ञान ही उपेय है—मोक्षमार्ग और मोक्ष दोनों ज्ञानमय ही हैं, उसमें अन्य कोई राग या विकल्प नहीं है। ऐसे ज्ञानमात्र भाव को जानकर जो उसका आश्रय करता है उसे, अनादि संसार से अबंध ऐसी चैतन्य की साधक भूमिका प्राप्त होती है, अर्थात् अनादिकाल से कभी जो प्रगट नहीं हुआ था ऐसा सम्यक्त्वादि सुप्रभात उसे प्रगट होता है और पश्चात् उसके फल में साध्य ऐसे केवलज्ञानरूप सुप्रभात प्रगट होता है। यह प्रभात अपूर्व है। लोग किसी मंगल अवसर पर कहते हैं कि आज 'सोने का सूरज उदित हुआ'.....यहाँ तो आत्मा में आनंद से जगमगाता हुआ सम्यक्त्व-सूर्य उदित हुआ, वह सच्चा सुप्रभात है। सूर्य तो प्रातःकाल उदित होता है और सायंकाल अस्त हो जाता है, परंतु यह चैतन्यसूर्य उदित हुआ, वह कभी अस्त नहीं होता। अखंड चैतन्यतत्त्व में जो भंडार भरा है, उसमें से प्रगट हुई अनंत ज्ञान-दर्शन-आनंद-वीर्यरूप दशा कभी अस्त नहीं होती।

जिसप्रकार हजार पँखुरियोंवाला कमल खिले या रिमझिम मेघ बरसे, उसीप्रकार चैतन्य के आनंद सरोवर में दृष्टि करके एकाग्र होने पर अनंतगुण की पँखुरियों से चैतन्यकमल खिल उठा और रिमझिम-रिमझिम आनंद की वर्ष होने लगी। अहा, ऐसे आत्मा का प्रेम करना और पर्याय में उसे प्रगट करना, वह संतों की अपूर्व भेंट-प्रसाद है।

सम्यग्दर्शन भी चैतन्यपिण्ड है, केवलज्ञान भी चैतन्यपिण्ड है; वे दोनों सुप्रभात हैं। सुप्रभात होने पर आत्मा के अनंतगुण आनंद सहित खिल उठे, उसमें अत्यंत मधुर चैतन्यस्वाद है।

भाई, तू अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर भगवान है, तू खाली नहीं है, अनंत गुणनिधान से परिपूर्ण है। पूर्वकाल में आत्मा को भूलकर दयादि शुभराग भी किया, परंतु उससे कहीं तेरे आत्मा में आनंद का सुप्रभात प्रगट नहीं हुआ, तेरा अज्ञानांधकार दूर नहीं हुआ और ज्ञाननेत्र नहीं खुले। राग से पार चिदानंद पिण्ड आत्मा को अंतर के अतीन्द्रिय स्वसंवेदनज्ञान से प्रतीति में लेने पर आत्मा में ज्ञानदीपक प्रज्वलित हुए, उसके घर दीपावली आयी; उसके अपूर्व सुप्रभात उदित हुआ, अनादिकालीन अज्ञानांधकार मिट गया और ज्ञान-दर्शनरूपी नेत्रों की पलकें खुल गईं; वह अब सुखपूर्वक सिद्धपद को साधेगा। आत्मा में अपूर्व वर्ष लगा, वह सदा सुखमय रहेगा। अहो, ऐसा मार्ग बतलाकर संतों ने महान उपकार किया है।

अंतर की पर्याय को पलटकर जिसने चैतन्यप्रभु से भेंट की, उसको ज्ञान की धारा में आनंद के पुष्प झरते हैं। अरे, प्रथम श्रद्धा तो करो... रुचि तो करो... कि मेरा आत्मा ज्ञान-आनंदमय है, ऐसे आत्मा की मुझे आवश्यकता है, आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ मुझे नहीं चाहिये।—ऐसे अंतर्मुखदशा करने पर पर्याय अंतरोन्मुख हो जाती है और आत्मा सम्यक्त्वादि जगमगामी हुई चैतन्यदशारूप खिल जाता है, वह मंगल सुप्रभात है। चैतन्य-आनंद के अंकुर उसे प्रगट हुए... आनंद की अनंत किरणों सहित जगमग करता हुआ चैतन्यसूर्य उदित हुआ... अनंत निधान अपने में प्रगट हुए... शक्ति में जो निधान भरे थे, वे पर्याय में झर-झर झरने लगे... वह आत्मा धर्मी हुआ, मोक्ष का साधक हुआ।

अहाहा! उस दशा की क्या बात! वह दशा बढ़ते-बढ़ते जहाँ केवलज्ञान का पूर्ण प्रभात खिला, उसकी तो बात ही क्या! भाई, यह तेरे अपने गीत गाये जा रहे हैं; जो कहा जा रहा है, यह सब तुझमें भरा है। उसमें अंतर्मुख होने पर वह पर्याय में प्रगट हो जाता है—वह आनंदमय सुप्रभात है।

जिसप्रकार सोने-चाँदी के छापवाले सिक्के होते हैं, उसीप्रकार धर्मी जीव ने अंतर की शक्ति में से जो शुद्धपर्याय प्रगट की, उसमें अतीन्द्रिय आनंद की छाप है; सम्यक्श्रद्धा की सुनहरी छाप उसके आत्मा में लग गई। मैं तो आनंद का समुद्र हूँ—ऐसी श्रद्धा करके जिसने आनंदमय स्वसंवेदन की छाप लगाई, वह जीव अब अल्पकाल में अनंतगुणमय केवलज्ञान प्रभात से सुशोभित हो उठेगा और मोक्ष प्राप्त करेगा।

साधक को ऐसी शुद्ध दशा हुई कि मिथ्यात्व-अधंकार का नाश हो गया और आनंदमय ज्ञान-प्रकाश प्रगट हुआ, उसकी धारा अतिशयरूप से मोक्ष की ओर चली। धर्मी की ज्ञानधारा रागादि से भिन्न है-अधिक है-इसलिये उस ज्ञानधारा को अतिशयपना है। उसका सम्यग्दर्शन वीतराग है, उसका सम्यग्ज्ञान भी वीतराग है। इसप्रकार वीतरागरस की झर-झर धारा उसे निरंतर वर्तती है। ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सोने का सूरज उदित हुआ; जिसप्रकार सोने में जंग नहीं लगती; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन होने पर जो ज्ञानधारा प्रगट हुई, वह शुद्ध है, उसमें रागादि विकाररूप जंग नहीं है। रागरहित चैतन्यप्रकाश से वह अतिशय शोभती है।

ऐसा आनंदमय चैतन्यप्रभात जयवंत वर्तता है

सम्यग्दर्शन होने से आत्मा में शुद्धपरिणति प्रगट हुई, वही सुप्रभात है। उस परिणति में आनंद भी साथ ही है। संतों की वाणी आत्मा के ऐसे स्वरूप को बतलाती है। केवली भगवान की वाणी हो या गणधर की, मुनि की अथवा ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ की हो, उसमें ऐसा स्वरूप आया है कि जिसे समझने से आनंददशासहित आत्मा प्रगट हो जाता है। राग से लाभ होता है—ऐसी वाणी संतों की नहीं है। जिसे समझने से राग का नाश हो और वीतरागता प्रगटे, ऐसी संतों की वाणी है। वीतरागी संतों की वाणी वीतरागता-पोषक होती है, आनंद की दाता होती है। जहाँ वाणी द्वारा कहा हुआ चैतन्यतत्त्व कानों में पड़ा कि वहाँ तुरंत सम्यग्ज्ञान होकर आनंदमय प्रभात प्रगट हो जाता है। ऐसी आनंद पर्याय में सुस्थित आत्मा शोभता है... वह अपूर्व मंगलमय सुप्रभात है।

वीरनाथ के मोक्षगमन की मंगल-दीपावली

2500 वें वर्ष का मंगल-प्रारंभ

कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन भगवान श्री महावीरस्वामी के मोक्षगमन का 2500 वाँ वर्ष प्रारंभ हुआ। अभूतपूर्व सिद्धदशा को प्राप्त करके भगवान मुक्त हुए। अनंत सुख की प्राप्तिरूप सिद्धि और दु:ख से—संसार से सर्वथा छूटनेरूप मुक्ति—ऐसी दशा भगवान ने आज के दिन प्राप्त की थी; उसका स्मरण करने का यह दिवस है। गौतमस्वामी आज के दिन केवलज्ञान प्राप्त करके अरिहंत हुए और सुधर्मस्वामी आज ही श्रुतकेवली बने। देहातीत होकर सिद्धभगवान ऐसा प्रसिद्ध कर रहे हैं कि अहो जीवो! संयोग एवं शरीरी के बिना ही आत्मा देहातीत चैतन्यभाव से स्वयं सुखी है... अतीन्द्रिय आनंदरूप आत्मा स्वयं है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदरूप आत्मा को जानने पर, स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञानरूप होकर आनंद का स्वाद आता है;—ऐसा वीरप्रभु का मार्ग है। ऐसा मार्ग जयवंत है।

2500वें वर्श के मंगल-प्रारंभ में दीपावली की भेंट के रूप में गुरुदेव ने उस सिद्धपद की परम महिमा पूर्वक कहा कि अहो! आज महावीर भगवान के मोक्षगमन का 2500 वाँ वर्ष लगा। वर्तमान में ऐसा वीरमार्ग प्राप्त करके सम्यग्दर्शन द्वारा 2+5 (सात) प्रकृतियों का क्षय होने लगा, वह मंगल है। सात प्रकृतियाँ (2+5) उनके शून्य (00) का प्रारंभ करना अर्थात् सम्यक्त्व की ऐसी अप्रतिहत आराधना करना—कि जिसमें बीच में भंग पड़े बिना क्षायिक सम्यक्त्व हो—वह भगवान के मोक्षकल्याण का सच्चा महोत्सव है; वह अपूर्व आनंदमय मंगल है। साधक जीव सम्यक्त्व के अखंड दीप जलाकर दीपावली का महोत्सव मनाता है। ऐसी आराधना प्रारंभ होने का फल मोक्ष है।

आनंदमय अपूर्व भेदज्ञान

ज्ञानपर्याय का आत्मा से अनन्यपना और पर से अत्यंत भिन्नपना

जैनशासन में बताई हुई जीव-अजीव की भिन्नता के भेदविज्ञान का अपार माहात्म्य है, और वह अपूर्व है। अनंतकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव ने परलक्षी शास्त्रज्ञान या शुभरागरूप व्रत-तप-त्याग आदि सब किया है परंतु शुद्धात्मा के भावश्रुतज्ञानरूप भेदज्ञान उसने एक क्षण भी पहले नहीं किया। वीतरागी संत कहते हैं कि हे जीवो! तुम एकबार स्व-पर का सच्चा भेदज्ञान करो तो अल्पकाल में तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। एक क्षण का भेदज्ञान अनंत काल के जन्म-मरण से छुड़ाकर मोक्षसुख का अपूर्व स्वाद चखाता है। समस्त परद्रव्यों से और परभावों से आत्मा का भिन्नपना और अपने ज्ञानस्वभाव से एकपना समझकर, अपूर्व भेदज्ञान द्वारा चैतन्यस्वाद का वेदन करना, वह भी जिनागम का सार है। भेदज्ञान के बिना सब असार है, भेदज्ञान ही सारभूत है। मुमुक्षु जीवों को प्रतिपल भेदज्ञान भाने योग्य है।

[समयसार, गाथा 390 से 404 के प्रवचन से]

आत्मा स्वयं ज्ञान है; आत्मा में परिपूर्ण ज्ञान है और शब्दादि अचेतन में किंचित् ज्ञान नहीं है, इसलिये ज्ञान आत्मा से ही होता है और पर से नहीं होता—ऐसा अनेकांत स्वभाव बतलाकर आचार्यदेव ने इन गाथाओं में ज्ञानस्वभाव की स्वतंत्रता घोषित की है। शास्त्र आदि परद्रव्य ज्ञान नहीं हैं, इसलिये वे ज्ञान का किंचित् भी कारण नहीं हैं; आत्मा स्वयं ज्ञान है; इसलिये आत्मा ही ज्ञान का कारण है; ज्ञानादि पर्यायों के साथ आत्मा तन्मय है।

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के मूल सूत्रों में तीन स्थानों पर विशेष भार है—

(1) 'सत्यं ण याणए किंचि' अर्थात् शास्त्र आदि कुछ जानते नहीं हैं।—इसलिये उनमें संपूर्ण अचेतनपना बतलाया है।

(2) 'अण्णं णाणं' अर्थात् उन शास्त्र आदि अचेतन से ज्ञान भिन्न है। शास्त्रादि कुछ

जानते नहीं हैं, उनके समक्ष 'आत्मा में परिपूर्ण ज्ञान है' ऐसा आया। आत्मा में परिपूर्ण ज्ञान है और श्रुत आदि में किंचित् ज्ञान नहीं है—इसप्रकार अस्ति-नास्ति से पूर्ण ज्ञानस्वभाव बतलाया है।

(3) 'जिणा विंति' अर्थात् जिनदेव ऐसा जानते हैं अथवा जिनदेव ऐसा कहते हैं। प्रत्येक गाथा में 'जिणा विंति' कहकर सर्वज्ञ भगवान की साक्षी दी है।

अहा, किसी अपूर्व योग में इस समयसार शास्त्र की रचना हुई है। प्रत्येक गाथा में अचिंत्य भाव भरे हुए हैं; एक-एक गाथा परिपूर्ण आत्मस्वभाव बतलाती है।

आत्मा स्वयं ज्ञान है और श्रुत के शब्द आदि अचेतन हैं; आत्मा में ज्ञान परिपूर्ण है और श्रुत आदि में किंचित् ज्ञान नहीं है। श्रुत में ज्ञान नहीं है और ज्ञान में श्रुत नहीं है; तो हे भाई, तेरे ज्ञान में श्रुत क्या सहायता करेगा? और तेरा आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण है तो तेरा ज्ञान पर की क्या आशा रखेगा? इसलिये ज्ञान को पर का किंचित् अवलंबन नहीं है, अपने आत्मस्वभाव का ही अवलंबन है।

इसप्रकार आत्मा का परिपूर्ण स्वाश्रित ज्ञानस्वभाव आचार्यदेव ने इन पंद्रह गाथाओं में बतलाया है।

जिन्हें अपने आत्मा का हित करना है-कल्याण करना है, उसे क्या करना चाहिये? उसका यह अधिकार चल रहा है। प्रथम तो, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान और आनंद ही उसका स्वभाव है और पर से तथा विकार से वह भिन्न है—ऐसे आत्मा की जब तक श्रद्धा न हो, तब तक शरीर-पैसा-स्त्री-पुत्र आदि से हितबुद्धि नहीं छूटती और जब तक पर में हितबुद्धि या लाभ-अलाभ की बुद्धि नहीं मिटती, तब तक स्वभाव को पहिचानने और राग-द्वेष को मिटाकर उसमें स्थिर रहने का सत्य पुरुषार्थ नहीं करता। इसलिये जिन्हें आत्महित करना है, ऐसे जीवों को आत्मा का स्वरूप क्या है? उसकी किसके साथ एकता है और किससे भिन्नता है?—वह जानना चाहिये।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान-सुख आदि के साथ एकमेक है और शरीर-पैसा आदि से उसकी भिन्नता है, राग से भी वास्तव में भिन्नता है। ज्ञान-आनंदस्वरूप यह आत्मा पर से भिन्न है—ऐसा कहते ही आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण, स्वाधीन और पर के आश्रयरहित

निरालंबी सिद्ध होता है। ऐसे आत्मा को जानना-मानना, वही हित का उपाय है, वही कल्याण है, वही धर्म है, वही मंगल है।

प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप है। यह शरीर, सो मैं नहीं हूँ, मैं तो आत्मा हूँ, मेरा आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण है और परवस्तुओं से भिन्न है; मेरे आत्मा को ज्ञान और आनंद के लिये किसी परवस्तु की आवश्यकता नहीं है। इसप्रकार अपने ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा का स्वीकार किये बिना कोई जीव धर्म नहीं कर सकता। यह आत्मस्वभाव सभी छोटे-बड़ों को समझ में आ सकता है। प्रत्येक जीव को सुख के लिए ऐसे आत्मस्वभाव को ही समझना आवश्यक है। यहाँ आचार्यदेव यह स्वभाव समझाते हैं।

जाननेवाला-देखनेवाला-आनंदस्वभावी आत्मा स्वयं है, उसे समझने में निमित्तरूप द्रव्यश्रुत है। इसलिये सर्वप्रथम द्रव्यश्रुत से ज्ञान को भिन्न समझाते हैं। श्री सर्वज्ञभगवान की वाणी, गुरु की वाणी या सूत्र के शब्द, वह सब द्रव्यश्रुत हैं, उसके आधार से इस आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। साक्षात् सर्वज्ञभगवान, गुरु या शास्त्र के लक्ष से राग में रुककर जो ज्ञान होता है, वह भी द्रव्यश्रुत जैसा है। देव और गुरु के आत्मा का ज्ञान उनमें है, परंतु इस आत्मा का ज्ञान उनमें नहीं है। जीव अपने स्वभाव की ओर झुककर जब सत्य समझता है, तब द्रव्यश्रुत को निमित्त कहा जाता है; परंतु देव-गुरु-शास्त्र के राग से आत्मस्वभाव समझ में नहीं आता। देव-गुरु की वाणी से तथा शास्त्र से यह आत्मा भिन्न है। द्रव्यश्रुत तो अचेतन है, उसमें कहीं ज्ञान नहीं है, इसलिये वह द्रव्यश्रुत स्वयं कुछ जानता नहीं है, और द्रव्यश्रुत के लक्ष से आत्मा समझ में नहीं आता। आत्मा स्वयं ज्ञानस्वभावी है, उस ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से ही आत्मा ज्ञात होता है। जानना अपना ही स्वभाव है।

द्रव्यश्रुत से आत्मा भिन्न है, देव-शास्त्र-गुरु से आत्मा भिन्न है, इसलिये उनके लक्ष से होनेवाला राग भी द्रव्यश्रुत में आ जाता है। ऐसा समझकर उस द्रव्यश्रुत की ओर के राग से भिन्न होकर, वर्तमान ज्ञान को अंतर में रागरहित त्रिकाली ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख करे तो अपना आत्मस्वभाव जानने में आवे। वर्तमान ज्ञानपर्याय को पर की ओर राग में एकाग्र करे तो अधर्म होता है, और अपने त्रिकाली ज्ञानस्वभाव की ओर एकाग्र करने पर धर्म होता है। ज्ञानस्वभाव के आधार से जो ज्ञान प्रगट होता, वह सम्यग्ज्ञान है। परद्रव्य इस आत्मा से भिन्न हैं, उनके लक्ष

से जो मंदकषाय और इन्द्रियज्ञान हो, उस मंदकषाय या इन्द्रियज्ञान के आश्रय से सम्यग्ज्ञान नहीं होता और आत्मा समझ में नहीं आता। इतना समझे, तब द्रव्यश्रुत से आत्मा भिन्न माना कहा जाता है, और तब जीव को धर्म होता है।

'द्रव्यश्रुत से आत्मा भिन्न है'—ऐसा कहने पर उसमें सच्चे द्रव्यश्रुत की स्वीकृति आ जाती है; क्योंकि द्रव्यश्रुत स्वयं ही ऐसा कहता है कि तू अपने ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख हो; तू स्वयं ही ज्ञान है। तेरा ज्ञान कहीं शास्त्रादि शब्दों में नहीं है। जो पर के आश्रय से ज्ञान होना कहते हैं, उन्हें द्रव्यश्रुत भी नहीं, वह तो कुश्रुत है। यहाँ तो भगवान द्वारा कहे हुए द्रव्यश्रुत की बात है। जिस जीव को आत्मा समझने की जिज्ञासा है, उसे प्रथम द्रव्यश्रुत की ओर लक्ष होता है; द्रव्यश्रुत के लक्ष से शुभराग होता अवश्य है, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पहिचान, सत्समामगम, शास्त्रस्वाध्याय आदि निमित्त भी अवश्य होते हैं और जिज्ञासु को उनके लक्ष से शुभराग होता है परंतु उन निमित्तों के लक्ष से आत्मस्वभाव समझ में नहीं आता। द्रव्यश्रुत आदि निमित्त और उस ओर के लक्ष से होता हुआ राग का आश्रय छोड़कर, उससे रहित त्रिकाली चैतन्यस्वभाव की रुचि करके ज्ञान को स्व की ओर उन्मुख करे, तभी सम्यग्ज्ञान होता है। जिज्ञासु जीव को श्रवण की ओर का शुभभाव होता है, परंतु श्रवण से ही ज्ञान होगा, ऐसा यदि मान ले तो वह कभी भी राग से भिन्न होकर स्वसन्मुख नहीं होगा और उसका अज्ञान नहीं टलेगा। अचेतन शब्दों से या राग से ज्ञान नहीं होता; ज्ञान तो अपने ज्ञानस्वभाव से ही होता है—ऐसा समझते ही अपूर्व भेदज्ञान प्रगट होता है।

तीर्थंकर होनेवाला जीव आत्मस्वभाव के यथार्थ ज्ञान और अवधिज्ञानसहित जन्म लेता है, और फिर मुनिदशा प्रगट करके, उग्र पुरुषार्थपूर्वक आत्मस्वभाव में स्थिरता करके वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट करता है। ऐसा परिपूर्ण केवलज्ञान प्रत्येक जीव का स्वभाव है। सर्वज्ञदेव को ऐसा केवलज्ञान प्रगट होने पर अपना परिपूर्ण आत्मस्वभाव और जगत के सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय एकसाथ प्रत्यक्ष जानने में आते हैं। केवलज्ञान होने पर भी तेरहवें गुणस्थान में तीर्थंकरनामकर्म का उदय होता है और उसके निमित्त से 'ॐ' ऐसी दिव्यध्वनि छूटती है। आत्मस्वभाव समझने में निमित्तरूप द्रव्यश्रुत है, उस द्रव्यश्रुत में सर्वश्रेष्ठ उत्कृष्ट दिव्यध्वनि है। परंतु उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान नहीं होता—ऐसा यहाँ बतलाया गया है। ज्ञानपर्याय दिव्यध्वनि से भिन्न है और आत्मा से अभिन्न है। दिव्यध्वनि पुद्गल की रचना है, वह अचेतन

है, उसमें ज्ञान नहीं; ज्ञान तो आत्मा का तन्मय स्वरूप है। अहा, कैसा अपूर्व भेदज्ञान कराया है!

जब तक जीव को राग-द्वेषादि होते हैं, तब तक उसको पूर्ण ज्ञान नहीं होता और उसकी वाणी भी क्रमवाली, अनेक अक्षरोंवाली तथा भेदरूप होती है। रागादि दूर होकर वीतरागता होने पर जो केवलज्ञान हुआ, वह समस्त पदार्थों को एकसाथ जानता है और उनकी वाणी अक्रमरूप, निरक्षरी तथा एकसमय में पूर्ण रहस्य कहनेवाली होती है, इसलिये उसे दिव्यध्वनि कहते हैं।

श्री सर्वज्ञदेव को संपूर्ण ज्ञान हो गया है और उनकी वाणी में भी एक-एक समय में पूर्ण रहस्य आता है। परंतु सामनेवाला जीव अपने ज्ञान की योग्यतानुसार जितना समझता है, उसे उतना ही निमित्त कहा जाता है। कोई जीव बारह अंग को समझे तो उसके लिये बारह अंग में वह वाणी निमित्त कहलाती है। कोई जीव करणानुयोग का ज्ञान करे तो उस समय उसे वह वाणी करणानुयोग के ज्ञान में निमित्त कहलाती है, और उसी समय दूसरा जीव द्रव्यानुयोग का ज्ञान करता हो तो उसे वह वाणी द्रव्यानुयोग के ज्ञान में निमित्त कहलाती है। इसमें ज्ञान की स्वाधीनता प्रसिद्ध होती है। जो जीव अंतरस्वभाव के आधार से जितना श्रद्धा-ज्ञान का विकास करे, उतना दिव्यध्वनि में निमित्तपने का आरोप आता है। इसलिये यहाँ भगवान आचार्यदेव कहते हैं कि ज्ञान और द्रव्यश्रुत भिन्न हैं। वाणी और शास्त्र तो अजीव हैं, अजीव के आश्रय से कभी भी ज्ञान नहीं होता। यदि वाणी से ज्ञान होता हो तो अजीव वाणी कर्ता और ज्ञान उसका कार्य हो। अजीव का कार्य तो अजीव होता है, इसलिये ज्ञान स्वयं अजीव सिद्ध होगा! जो जीव परवस्तु के आश्रय से अपना ज्ञान मानता है, उस जीव का ज्ञान मिथ्या है, उसे यहाँ अचेतन कहा है। अपने चेतनस्वभाव को वह नहीं जानता।

पुस्तक और वाणी तो जड़ हैं, वे तो ज्ञान नहीं हैं। परंतु मंद कषाय के कारण अकेले शास्त्र के लक्ष से प्रगट होनेवाला ज्ञान भी वास्तव में ज्ञान नहीं है। जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये द्रव्य-गुण-पर्याय, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, नवतत्त्व आदि संबंधी ज्ञान का विकास मात्र शास्त्रों के लक्ष से हो, और शब्दों से तथा राग से भिन्न होकर ज्ञानस्वभाव का लक्ष न करे तो उस ज्ञान के विकास को भी द्रव्यश्रुत में गिनकर अचेतन समान कहा है। शास्त्र आदि परद्रव्य, उनके लक्ष से होनेवाला मंद कषाय और उसके लक्ष से कार्य करता हुआ वर्तमान जितना ज्ञान का विकास, उन सबका आश्रय छोड़कर, उनके साथ की एकता छोड़कर

त्रिकाली आत्मस्वभाव का आश्रय करके, आत्मा में जो ज्ञान अभेद होकर परिणमित होता है, वही सच्चा ज्ञान है।

प्रश्न—यदि शब्द अचेतन हैं और वाणी से—श्रुत से ज्ञान नहीं होता तो 'तीर्थंकर संतों की वाणी जयवंत वर्ते, श्रुत जयवंत हो'—ऐसा किसलिये कहा जाता है?

उत्तर—वाणी से ज्ञान नहीं होता, परंतु स्वभाव की ओर की एकाग्रता से ज्ञान प्रगट होता है। सम्यग्ज्ञान होने पर जीव ऐसा जानता है कि पहले वाणी की ओर लक्ष था, इसलिये सम्यग्ज्ञान होने में निमित्तरूप वाणी है। वास्तव में तो अपने आत्मा में जो भेदज्ञान प्रगट हुआ है, वह (भावश्रुत) जयवंत हो—ऐसी भावना है; और शुभविकल्प के समय, भेदज्ञान के निमित्तरूप वाणी में आरोप करके कहते हैं कि 'श्रुत जयवंत हो, भगवान की और संतों की वाणी जयवंत हो', क्योंकि वह सम्यक्श्रुत भावश्रुत में निमित्त है। परंतु उस समय धर्मी को अंतर में बराबर प्रतीति है कि वाणी आदि परद्रव्य से या उसकी ओर के राग से मेरे आत्मा को किंचित् लाभ नहीं होता।

आत्मा के ज्ञान में वाणी का अभाव है और वाणी में ज्ञान का अभाव है। जीव का कोई भी गुण अचेतन में नहीं है, इसलिये जिसे अपने आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शांति, सुख आदि प्रगट करना हों, उसे बाह्य में दृष्टि न करते हुए, अनंत गुणस्वरूप अपने आत्मस्वभाव को देखना चाहिये। आत्मस्वभाव की ओर उन्मुख होने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि प्रगट होते हैं। इसके अतिरिक्त वाणी, शास्त्र आदि बाह्य वस्तुओं के लक्ष से रागादि बंधभाव होते हैं।

अहा, आचार्यदेव ने ज्ञानस्वभाव की अपूर्व बात कही है। वाणी अचेतन है, उसके आधार से ज्ञान नहीं; ज्ञानस्वभावी आत्मा स्वयं ही ज्ञान है। अहा, यह भेदज्ञान की परम सत्य बात है, आत्मकल्याण का मार्ग है। परंतु जिन्हें अपने कल्याण की भावना नहीं है और सांसारिक मान-प्रतिष्ठा लेना चाहते हैं—ऐसे तुच्छबुद्धि जीवों को ऐसी बात नहीं रुचती, इसलिये वास्तव में उन्हें अपना ज्ञानस्वभाव नहीं रुचता और विकारभाव रुचता है। ऐसी अपूर्व आत्मस्वभाव की बात श्रवण करके ऐसे जीव पुकार करते हैं कि 'अरे, आत्मा पर का कुछ भी नहीं करता-ऐसा कहना, वह तो जहर के इंजेक्शन देने जैसा है।' अरे, क्या हो! यह भेदज्ञान की परम अमृत जैसी बात भी उन्हें जहर समान प्रतीत हुई!! भाई! एकबार इस भेदज्ञान का

इंजेक्शन ले तो अनंतकाल के मिथ्यात्व का जहर उतर जायेगा, और तुझे अतीन्द्रिय आनंद होगा। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, विकार और पर का वह अकर्ता है–ऐसे भेदज्ञान की बात तो अनादिकालीन जो मिथ्यात्वरूपी जहर चढ़ा है, उसे उतारने के लिये परम अमृत के इंजेक्शन के समान है। यदि एकबार भी आत्मा ऐसा इंजेक्शन ले तो उसे जन्म–मरण का रोग मिटकर सिद्धदशा हुए बिना न रहे। आत्मा और विश्व के समस्त पदार्थ स्वतंत्र हैं, परिपूर्ण हैं, निरावलंबी हैं—ऐसा सम्यक्बोध, वह तो परम अमृत है या विष!! ऐसा परम अमृत भी जिस जीव को 'जहर के इंजेक्शन' समान लगता है, उस जीव को उसके मिथ्यात्वभावों का जोर ही उसे पुकार रहा है! यह तो अपना कल्याण करने के लिये और मिथ्यात्वरूपी जहर को दूर करने के लिये अमृत का अचूक इंजेक्शन है। अपने परिपूर्ण स्वभाव का विश्वास करे तो सम्यग्दर्शन प्रगट हो अर्थात् धर्म का प्रारंभ हो। वह सम्यग्दर्शन स्वयं चैतन्यअमृत से परिपूर्ण है, और अमृत अर्थात् मृत्युरहित ऐसे मोक्षपद का वह कारण है।

आत्मस्वभाव का आश्रय करना वह प्रयोजन है

आत्मस्वभाव समझने में, तथा समझने से पहले और समझने के पश्चात् भी सत्श्रुत निमित्तरूप होता है, उसका यहाँ निषेध नहीं है। परंतु वे सत् निमित्त ऐसा कहते हैं कि तू अपने ज्ञानस्वभाव का आश्रय कर, और पर का आश्रय छोड़। क्योंकि ज्ञान के साथ तू एकमेक है और पर से तेरी भिन्नता है। यदि निमित्तों का आश्रय छोड़कर अपने स्वभाव का आश्रय करे तो जीव को सम्यग्ज्ञान होता है, और इसप्रकार स्वाश्रय से सम्यग्ज्ञान प्रगट करे, तभी द्रव्यश्रुत को वास्तव में उसका निमित्त कहा जाता है, और उसके द्रव्यश्रुत के ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। इसप्रकार यहाँ निमित्त–व्यवहार का आश्रय छोड़कर स्वभाव का आश्रय करना–वही प्रयोजन है। वही धर्म का मार्ग है।

प्रश्न—यदि श्रुत–शास्त्र, वह ज्ञान का कारण नहीं है, तो ज्ञानी पूरे दिन समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्र हाथ में लेकर क्यों पढ़ते हैं?

उत्तर—पहले तो यह समझो कि आत्मा क्या है? ज्ञान क्या है? शास्त्र क्या है? और हाथ क्या है? हाथ और शास्त्र तो दोनों अचेतन हैं, आत्मा से भिन्न हैं, उनकी क्रिया कोई आत्मा नहीं करता। ज्ञानी को स्वाध्याय आदि का विकल्प हुआ और उस समय ज्ञान में उसप्रकार के

ज्ञेयों को ही जानने की योग्यता थी, इसलिये ज्ञान होता है, और उस समय निमित्तरूप से समयसारादि वीतरागी शास्त्र उनके अपने कारण से स्वयमेव होते हैं। वहाँ ज्ञानी ने तो आत्मस्वभाव के आश्रय से ही ज्ञान किया है; ज्ञानपर्याय के साथ ही उसे तन्यमता है, अन्य किसी के साथ उसे तन्मयता नहीं है। हाथ की, शास्त्र की या राग की क्रिया भी उसने नहीं की है। शास्त्र के कारण से ज्ञान नहीं होता, और जीव के विकल्प के कारण शास्त्र नहीं आया। ज्ञान का कारण तो अपना ज्ञानस्वभाव होता है, या अचेतन वस्तु होती है ? जिसे अपने ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा नहीं है और अचेतन-श्रुत के करण अपना ज्ञान मानता है, उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता। यह भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। सर्वज्ञ वीतरागदेव की साक्षात् वाणी वह ज्ञान का असाधारण-सर्वोत्कृष्ट निमित्त है, परंतु वह अचेतन है, उसके आश्रय से—उसके कारण से आत्मा को किंचित् ज्ञान नहीं होता, तो अन्य निमित्तों की बात ही कहाँ रही ?

कोई ऐसा कहे कि—प्रथम तो वाणी आदि निमित्त के लक्ष से आत्मा आगे बढ़ता है न ?—तो उससे कहते हैं कि भाई, वाणी के लक्ष से तो पापभाव मिटकर पुण्यभाव होता है, परंतु वह कहीं आगे बढ़ा नहीं कहा जाता; क्योंकि शुभभाव तक तो जीव अनंतबार आ चुका है। शुभ-अशुभ से पार आत्मा का भेदज्ञान करके ज्ञानस्वभाव में आये, तभी आगे बढ़ा कहा जाता है। निमित्त के लक्ष से कभी भेदज्ञान नहीं होता। अपने ज्ञानस्वभाव के लक्ष से प्रारंभ करे, तभी आगे बढ़ता है और भेदज्ञान के बल से पूर्णता होती है।

आचार्यदेव के कथन में गर्भितरूप से आ जानेवाले नव तत्त्व

श्री आचार्यदेव की शैली बहुत गंभीर है, एक-एक सूत्र का जितना विस्तार करना हो, उतना हो सकता है। 'शब्द वह ज्ञान नहीं'—ऐसा कहने पर उसमें नवो तत्त्व गर्भितरूप से आ जाते हैं।

(1) स्वयं ज्ञानमय जीवतत्त्व चेतन है।

(2) अपने से भिन्न ऐसा द्रव्यश्रुत वह अचेतन है—अजीवतत्त्व है।

(3) अपना लक्ष चूककर उस अजीव की ओर (-वाणी की ओर) लक्ष करने से शुभराग होता है, वह पुण्यतत्त्व है।

(4) विषय-कषाय की ओर का अशुभभाव-वह पापतत्त्व है।

(5) पर के लक्ष से होनेवाला शुभ-अशुभ विकार—वह आस्रवतत्त्व है।

(6) उस विकारभाव द्वारा कर्म का बंधन होता है—वह बंधतत्त्व है।

(7-8) वाणी और आत्मा को भिन्न जानकर अपने ज्ञानस्वभाव का अनुभव करने पर सम्यग्दर्शनादि प्रगट होते हैं—वह संवर-निर्जरातत्त्व है। और

(9) आत्मस्वभाव में लीन होने पर रागादि मिटकर ज्ञान की पूर्णता होती है—वह मोक्षतत्त्व है।

मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा, वाणी आदि अचेतन से भिन्न हूँ—ऐसा जिसने निर्णय किया, वह अपने ज्ञान को पर का अवलंबन नहीं मानता। उसे अपने अंतरस्वभाव के आश्रय से आत्मज्ञान प्रगट होता है और उसमें एकाग्रता से प्रतिक्षण शुद्धि की वृद्धि होती जाती है।

'मुझे मोक्ष करना है अथवा मुझे धर्म करना है'—ऐसा अंतर में विचारता रहे, उससे कहीं धर्म नहीं होता। मोक्ष कैसे हो, वह बतलानेवाली संतों की वाणी के लक्ष में रुके तो भी मोक्ष नहीं होता। अपनी वर्तमान पर्याय में से विकार दूर करके मोक्षदशा करना है—इसप्रकार पर्याय पर देखा करे तो भी मोक्ष नहीं होता—धर्म नहीं होता, परंतु उस वाणी और विकार से भिन्न ज्ञानस्वभाव, वह मैं हूँ—ऐसा समझकर उस आत्मस्वभाव का आश्रय करने से निर्मलदशा प्रगट होती है, और पराश्रय से होनेवाले ऐसे मिथ्यात्व-रागादिभाव दूर होते हैं। आत्मा ज्ञान-आनंद का विम्ब है, उसमें परिपूर्ण ज्ञानसामर्थ्य है, उस सामर्थ्य का विश्वासा करके उसका अनुभव करने पर पर्याय में पूर्ण ज्ञानसामर्थ्य प्रगट होता है। यही मुक्ति का उपाय है।

जो ज्ञान स्वयं अंतर्मुख होकर ज्ञानस्वभाव में तन्मय होकर परिणमित हुआ, वह स्वयं सम्यग्दर्शन है। वह पर्याय स्वयं आत्मा है; आत्मा स्वयं अपनी पर्याय में तन्मय होकर परिणमित हुआ है। जिसप्रकार जड़-चेतन दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं, उसीप्रकार कहीं द्रव्य-पर्याय भिन्न नहीं हैं, अनन्य हैं। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा की समस्त पर्यायों में ज्ञान तन्मय है; अचेतन के समस्त गुण-पर्यायों से ज्ञान अत्यंत भिन्न है और चेतन के समस्त गुण-पर्यायों में ज्ञान तन्मयरूप विद्यमान है। अहा, ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा का ग्रहण (अर्थात् उसे जानकर उसमें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र) जिसने किया है, वह जीव कृतकृत्य स्वसमय है। जिज्ञासु जीवों को कुगुरु का संग छोड़कर, सत्पुरुष की वाणी श्रवण करने का भाव आता है, परंतु 'मेरा ज्ञान वाणी

के कारण नहीं है, वाणी के लक्ष से भी मेरा ज्ञान नहीं है, अंतर में ज्ञानस्वभाव से ही मेरा ज्ञान आता है'—ऐसा निर्णय करके यदि स्वभाव की ओर उन्मुख हो, तभी सम्यग्ज्ञान होता है और उसी ने द्रव्यश्रुत का सच्चा श्रवण किया है; द्रव्यश्रुत जो कहना चाहता है, वह उसने लक्ष में लिया है।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी स्वयं महाविदेहक्षेत्र में जाकर सर्वज्ञदेव श्री सीमंधर भगवान की दिव्यवाणी का आठ दिन तक श्रवण कर आये थे; वे इस गाथा में कहते हैं कि भगवान की साक्षात् दिव्यवाणी अचेतन है, उसमें आत्मा का ज्ञान नहीं है। भगवान की वाणी यही बतलाती है कि ज्ञान की उत्पत्ति वाणी के आश्रय से नहीं है; आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसी के आश्रय से उसका ज्ञान है।

वाणी अचेतन है, उसमें ज्ञान नहीं है—ऐसा व्यतिरेकपना कहा, और ज्ञान वह आत्मा है—ऐसा अन्वयपना है। अर्थात् आत्मा अपने अनंत गुणस्वभावों से परिपूर्ण है और वाणी आदि से बिलकुल भिन्न है,—इसप्रकार अस्ति-नास्ति द्वारा आचार्यदेव ने आत्मस्वभाव बतलाया है।

ज्ञान और वाणी भिन्न हैं। ज्ञान में से वाणी नहीं निकलती और वाणी में से ज्ञान प्रगट नहीं होता। ज्ञान में जैसी योग्यता हो, वैसी वाणी निमित्तरूप होती है—ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है; वहाँ अज्ञानी जीव भ्रम से ऐसा मानता है कि वाणी के कारण ज्ञान होता है। इसलिये वह वाणी का आश्रय नहीं छोड़ता और स्वभाव का आश्रय नहीं करता, इसलिये उसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता।—ऐसे जीव को वाणी और ज्ञान की अत्यंत भिन्नता बतलाते हैं। ज्ञान, चेतना है और वाणी, जड़ का परिणमन है। ज्ञान और वाणी दोनों अपनी-अपनी वस्तु में तन्मय होकर स्वतंत्ररूप से परिणमित होते हैं। ऐसा अपूर्व भेदविज्ञान करनेवाला जीव स्वसमय में स्थिर होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मोक्ष प्राप्त करता है।—वह वीरमार्ग है।

— जय महावीर!

भगवान! आपका मुक्तिमार्ग हमने जाना है, हम भी उस मार्ग पर चले आ रहे हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि शरीर के आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं है, आत्मा के आश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह मोक्षमार्ग है; भगवंतों ने ऐसे मार्ग का सेवन किया था—ऐसा हम जानते हैं, और हम ऐसे मोक्षमार्ग की उपासना करते हैं।

पूर्वकाल में अनंत तीर्थंकर हुए; वर्तमान में विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर विराजमान हैं और अनंत तीर्थंकर भविष्य में होंगे; वे सब अरहंत कैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, वह हम अपने स्वसंवेदनज्ञान से जानते हैं। स्व-द्रव्याश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं, वही मोक्षमार्गरूप से देखने में आते हैं। वह मार्ग हमने देखा है और उस मार्ग की हम सेवा करते हैं।

यहाँ क्षेत्र की अपेक्षा से तीर्थंकर का विरह है, परंतु भाव में विरह नहीं है; तीर्थंकरों ने जिस भाव की उपासना की (जिस रत्नत्रय की सेवा की), उसका हमें विरह नहीं है। तीर्थंकरों ने कैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना की, वह हम अपने स्वसंवेदन से बराबर जानते हैं। पहले कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि महान संत हुए, वे वीतरागी मोक्षमार्ग का सेवन करते थे—ऐसा निर्णय वर्तमान में भी उनकी वाणी से धर्मात्मा कर लेते हैं।

अहो, देखो तो सही धर्मात्मा की शक्ति! अपने स्वसंवेदन के सामर्थ्य से अनंत तीर्थंकरों का माप तथा हजारों वर्ष पहले हुए वीतरागी संतों का माप कर लिया है। कोई भी भगवंत शरीर की या राग की सेवा करके मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए हैं परंतु अंतर में ज्ञान का सेवन करके समस्त भगवंत मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। धर्मी प्रमोद से कहता है कि हे प्रभु! आपका मुक्तिमार्ग हमने जाना है, और हम भी ऐसे ही मोक्षमार्ग का सेवन करते हैं... आपका अनुसरण करके मोक्षमार्ग में आ रहे हैं। इसप्रकार धर्मी जीव नि:शंक मोक्षमार्ग को जानता है।

धर्मी स्वयं तीर्थंकरों के मार्ग का सेवन करके उसका निर्णय करता है। सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र के भावरूप मोक्षमार्ग है; उसका सेवन करके तीर्थंकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं—वह पर्याय है। जिसने अंतर की अनुभूति की, उसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन किया, वह अनुभूति स्वयं आत्मा ही है, आत्मा उससे भिन्न नहीं है। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आत्मा का सेवन करना, उसमें शुभराग नहीं है, तो फिर शरीर की तो बात ही कैसी ?

अहा, हमारे धर्मपिता, जिनके मार्ग पर हम जा रहे हैं, उन्होंने तो ज्ञानमय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन किया था, कहीं शरीर के द्रव्यलिंग का या शुभराग का उन्होंने मोक्षमार्ग के रूप में सेवन नहीं किया। ज्ञानमय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह एक ही मोक्षमार्ग है; शुभराग या शरीर के आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं है-ऐसी सूत्र की अनुमति है। इसलिये अन्य समस्त चिंताओं को छोड़कर एक ज्ञान का ही सेवन कर, ज्ञान के सेवन द्वारा अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में लगा।

तीर्थंकर अरिहंतों का उदाहरण देकर आचार्यदेव ने रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। ऐसा मार्ग बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीवो! तुम अपने आत्मा को भी ऐसे मोक्षमार्ग में स्थापित करो!

तू स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्या, अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥

देखो, अरिहंतों की पहिचान! अरिहंत जब साधकरूप से वर्तते थे, उस समय कैसा वेदन करते थे, वह हमें अपने साधकभाव में निःसंदेह ज्ञात होता है। समस्त भगवंतों ने मोक्ष के लिये कैसा कार्य किया ?—तो कहते हैं कि रागरहित ज्ञानमय रत्नत्रय की उपासना की थी। समस्त भगवंतों के द्वारा उपासित यही एक मोक्षमार्ग है, अन्य मार्ग मोक्ष के लिये है ही नहीं।

अर्हंत सौ कर्मोतणो करी नाश अे ज विधि वडे।
उपदेश पण अेम ज करी निर्वृत थया नमुं तेमने॥

— ऐसा निर्णय करके धर्मी भी उसी मार्ग का सेवन करते हैं। मोक्ष जानेवाले जीव को निर्ग्रंथ मुनिलिंग ही होता है, अन्य द्रव्यलिंग नहीं होता—यह ठीक है, परंतु—

वह लिंग मुक्तीमार्ग नहिं, अर्हंत निर्मम देह में,
बस लिंग तजकर ज्ञान अरु चारित्र, दर्शन सेवते।

मुनिलिंग अरु गृहीलिंग—ये नहिं लिंग मुक्तीमार्ग है,
चारित्र-दर्शन-ज्ञान को बस मोक्षमार्ग प्रभू कहे॥

इसलिये हे जीव! तू अपने आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित करके तन्मय परिणामवाला बन। अरिहंतों को काया है परंतु काया की ममता नहीं है।—'काया की विसारी माया; स्वरूपे समाया अेवा, निर्ग्रंथनो पंथ भवअंतनो उपाय छे' जो शरीर को (द्रव्यलिंग को) मोक्ष का कारण माने, उन्हें शरीर का ममत्व नहीं छूटता। भगवंतों ने तो शरीर को मोक्षमार्ग न मानकर उसका ममत्व छोड़ा और रत्नत्रय के सेवन द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। तू भी अपने आत्मा को ऐसे मोक्षमार्ग में लगा।—यह सिद्ध भगवान का आदेश है।

शुद्ध ज्ञानमय आत्मा है, वह अमूर्तिक है; ऐसे शुद्ध ज्ञानमय आत्मा में देह या रागादि भाव नहीं हैं, देह से और राग से पार ऐसे शुद्ध ज्ञानमय आत्मा का सेवन, वही मोक्षमार्ग है; परंतु उसने भिन्न ऐसा द्रव्यलिंग (-नग्न शरीर या महाव्रतादि के विकल्प, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्ध ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से स्वयं ऐसे मोक्षमार्ग के उपासक होकर आचार्यदेव समस्त अरहंतों को साक्षीरूप रखकर कहते हैं कि अहा! समस्त भगवान अरहंतदेवों ने ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही मोक्षमार्गरूप से उपासना की है—ऐसा देखने में आता है। हम तो देहादि द्रव्यलिंग का ममत्व छोड़कर, शुद्ध ज्ञान के सेवन द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना से मोक्षमार्ग साध रहे हैं, और सर्व अरहंत भगवंतों ने भी इसीप्रकार मोक्षमार्ग की उपासना की थी ऐसा निःशंकरूप से हमारे निर्णय में आता है।

यदि देहमय लिंग या उस ओर का शुभविकल्प, वह मोक्ष का कारण हो तो अरहंत भगवंत उसका ममत्व छोड़कर दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना किसलिये करते? द्रव्यलिंग से ही मोक्ष प्राप्त करते!—परंतु अरिहंत भगवंतों ने तो देहादि और रागादि से विमुख होकर, शुद्धज्ञानमय चिदानंदतत्त्व की सन्मुखता द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही उपासना की, इसलिये यह निश्चित हुआ कि देहादिमय लिंग, वह मोक्षमार्ग नहीं है, राग भी मोक्षमार्ग नहीं है; परमार्थतः दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना ही मोक्षमार्ग है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना कैसे होती है? शुद्ध ज्ञानमय आत्मा के सेवन से ही रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग की उपासना होती है।

देखो, आचार्यदेव को कितनी निःशंकता है! अंतर में स्वयं तो निर्विकल्प अनुभव में

झूलते-झूलते ऐसे मोक्षमार्ग की साधना कर रहे हैं, और निर्भयता से कहते हैं कि समस्त भगवान अरहंतदेवों को शुद्ध ज्ञानमयपना है, और उन्होंने द्रव्यलिंग के आश्रयभूत शरीर का ममत्व छोड़ दिया है, इसलिये द्रव्यलिंग के त्याग द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र की मोक्षमार्गरूप से उपासना देखी जाती है। समस्त तीर्थंकरों ने मोक्षमार्ग की इस एक ही रीति से उपासना की है-ऐसा हमें दिखायी देता है।

कोई कहे कि 'देखने में आता है'—ऐसा कहा तो क्या आचार्यदेव ने अरहंत देव को प्रत्यक्ष देखा है? वर्तमान में या कुन्दकुन्दाचार्यदेव थे, उस काल भी यहाँ अरहंत देव तो नहीं थे!

उसे यहाँ समझाते हैं कि हे भाई! आत्मा में स्वानुभव-प्रत्यक्ष से जहाँ साक्षात् अनुभव हुआ, वहाँ निःसंदेह प्रतीति हो गई कि ऐसा ही मोक्षमार्ग तीनों काल होता है। और फिर कुन्दकुन्दाचार्यदेव की तो विदेहक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर भगवान से भेंट हुई थी। आठ दिन तक भगवान सीमंधर परमात्मा की सभा में दिव्यध्वनि का साक्षात् श्रवण किया था, वहाँ अनेक केवलज्ञानी भगवंत विराजमान थे, वहाँ गणधरदेव और मुनिवरों के समूह ऐसे मोक्षमार्ग की साधना करते थे।—उन्हें प्रत्यक्ष देखकर और वैसा मोक्षमार्ग अपने आत्मा में प्रगट करके आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! मोक्षमार्ग तो शुद्ध ज्ञानमय आत्मा के आश्रित रत्नत्रय की उपासना से ही है, ऐसा हमारे देखने में आता है, अन्य कोई मोक्षमार्ग हमारे देखने में नहीं आता।

अहा, जिसे साधकपना प्रगट करना हो, उसे साधकपना कैसे प्रगट हो, उसकी यह बात है। मोक्ष को साधने के लिये सूत्र की और संतों की आज्ञा तो इसप्रकार है कि तू अपने स्वद्रव्य का आश्रय करके उसी में विहर! तू अपने आत्मा को रत्नत्रय में लगा तो तू मोक्षमार्ग में आया—ऐसी सूत्र की और संतों की संमति है।

आत्मा का वीतरागी ज्ञान स्वभाव है। उस वीतरागी स्वभाव की निर्विकल्प-वीतरागी श्रद्धा, उसका वीतरागी ज्ञान, और उसमें वीतरागी लीनता—ऐसा रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग है।

ऐसे मोक्षमार्ग के अतिरिक्त कोई दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। इसलिये जिसे साधकदशा प्रगट करना हो और मोक्ष को साधना हो, उसे आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीर्थ की उपासना करनी चाहिए। द्रव्यलिंग तो शरीराश्रित होने से परद्रव्य हैं; वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है।

द्रव्यलिंग को शरीराश्रित कहा, उसमें व्रत-महाव्रत के शुभविकल्प भी समझ लेना, क्योंकि वे भी परद्रव्य के आश्रित हैं, इसलिये वे मोक्ष का कारण नहीं हैं।

मोक्ष का कारण तो स्वद्रव्य के आश्रित होता है; स्वद्रव्य के अर्थात् आत्मस्वभाव के आश्रित ऐसे जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही मोक्षमार्ग है—ऐसा कहते हैं.....

'कौन कहता है ?' कि भगवान जिनदेव कहते हैं। समस्त जिनेन्द्र भगवंतों ने शुद्धज्ञान के आश्रय से (अर्थात् शुद्ध आत्मा के आश्रय से) ही मोक्षमार्ग की आराधना की; और उन जिन-भगवंतों ने अन्य मुमुक्षु श्रोताजनों के लिये भी वही मार्ग बतलाया है।

गिरनार आदि मोक्षधाम की यात्रा का भाव कुन्दकुन्द आचार्यदेव जैसे महान संतों को भी आया था। वे गिरनार की यात्रा को पधारे थे—ऐसा बहुमान का विकल्प धर्मी को आता है। श्रीमद राजचंद्रजी भी दक्षिण देश के पर्वतों का अवलोकन करके बहुमानपूर्वक कहते हैं कि अहा! इस ओर के नग्न ऊँचे अडोल वृत्ति से खड़े पहाड़ों को देखकर स्वामीकार्तिकेयादि (मुनियों) की अडोल वैराग्यमय दिगम्बर वृत्ति का स्मरण होता था। उन स्वामी कार्तिकेयादि को नमस्कार हो!

देखो, बाहुबली भगवान कैसे अडोल खड़े हैं! मानो मोक्ष को साधने की रीति बतला रहे हों—कैसा अद्भुत दृश्य है!

— इसप्रकार मोक्षमार्ग के प्रेमी को तीर्थधामों के प्रति भी बहुमान का भाव आता है। रत्नत्रयरूप परिणमित हुए जीवों को भी 'तीर्थ' कहा जाता है, क्योंकि जिससे तरते हैं, वह तीर्थ है; रत्नत्रयरूप नौका द्वारा संसार से तरते हैं, इसलिये वह तीर्थ है। अनुभव की प्रतीति वाले मुमुक्षु जीव को ऐसे परमात्मा एवं धर्मात्मा के प्रति परम प्रीति और बहुमान आता है।

परंतु उस समय धर्मात्मा को अंतर में प्रतीति है कि यह भाव परद्रव्याश्रित हैं, ये सचमुच मेरे मोक्ष का साधन नहीं हैं, जितना भाव मेरे स्वद्रव्य का अवलंबन करता है, वही मोक्ष का साधन है।

यहाँ किसी एक जीव की बात नहीं है; यह तो महान सिद्धांत है, इसलिये सर्व जीवों के लिये तीनों काल अबाधित नियम है। किसी भी क्षेत्र में जब जिस किसी जीव को मोक्ष साधना हो, वह इस नियम के अनुसार ही मोक्ष को साध सकता है। 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि

मोक्षमार्गः'—ऐसा मोक्षशास्त्र का प्रथम ही सूत्र है, वह समस्त संसार को तीनों काल लागू होता है और उसके बीज इस समयसार में भरे हैं।

समस्त कर्मों से रहित पूर्ण शुद्ध आत्मपरिणाम, वह मोक्ष है; तो उस मोक्ष का कारण भी उसी प्रकार का होना चाहिये, अर्थात् मोक्ष के कारणरूप परिणाम भी कर्मरहित, शुद्ध होना चाहिये! जिस परिणाम से कर्म बँधें, वह परिणाम मोक्ष का साधक नहीं है। आत्मा के आश्रय से होनेवाले वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप परिणाम, वही मोक्ष का साधन है-ऐसा नियम है।

इसलिये हे भव्य! अपने आत्मा को तू ऐसे मोक्षमार्ग में लगा और अन्य भावों का ममत्व छोड़। स्वद्रव्य के आश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग, उसी में अपने आत्मा को लगा—ऐसी सूत्र की अनुमति है।

अहा! जिसे साधकपना प्रगट करना है, उसे साधकपना कैसे प्रगट हो, उसकी यह बात है। मोक्ष साधने के लिये सूत्र की और संतों की आज्ञा तो ऐसी ही है कि तू अपने स्वद्रव्य का आश्रय करके उसी में विहर! तू अपने आत्मा को स्वद्रव्य में लगा... तब तू मोक्षमार्ग में आया है—ऐसी सूत्र और संतों की संमति है।

आत्मानंद का अनुभव

शरीर का, कुटुम्ब का क्या होगा—ऐसे विकल्प के कोलाहल को एक ओर रख, और चैतन्यस्वभाव की महिमा का मंथन कर। छह महीने तक अंतर्मुख होने का प्रयत्न कर और बाह्य की चिंता छोड़। तू बाहर की चिंता करेगा, तब भी उसका तो जो होना है, वह होगा, और तू चिंता न करे तो भी उसका कुछ अटक जानेवाला नहीं है; इसलिये तू उसकी चिंता छोड़कर एकबार तो सततरूप से अपने आत्मा के प्रयत्न में लग... छह महीने तो चैतन्य के चिंतन में अपने उपयोग को लगा... ऐसे धारावाही प्रयत्न से तुझे अवश्य अपने अंतर में आत्मानंद का अनुभव होगा।

महावीर के भक्तो.... मोक्षमार्ग में आओ!

जो जीव मोक्षार्थी है, मोक्ष का इच्छुक है—ऐसे सुपात्र भव्य जीव को संबोधन करके आचार्यदेव आदेश देते हैं कि हे भव्य! तू अपने आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग में स्थापित कर।

तू स्थाप निज को मोक्षपथ में, ध्या, अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥

हे भव्य! तू मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को स्थापित कर, उसका ही ध्यान कर, उसी का संचेतन—अनुभवन और उसमें ही निरंतर विहार कर; अन्य द्रव्यों में न विहर।

देखो, आचार्यदेव सुपात्र मोक्षार्थी जीव को आज्ञा देकर मोक्षमार्ग में प्रेरित करते हैं। मोक्षार्थी जीव को क्या करना? शरीरादि और रागादि का ममत्व छोड़कर मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को स्थापित करना। हे जीव! अनादि से बन्धमार्ग में आत्मा को स्थापित किया है, वहाँ से हटाकर अपने आत्मा को अब मोक्षमार्ग में स्थापित कर।

आचार्य भगवान ने अपने आत्मा को तो मोक्षमार्ग में स्थापित किया है, स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित होकर मोक्षमार्ग में आत्मा को स्थापित किया है, और अन्य मोक्षार्थी को संबोधन करके कहते हैं कि हे भव्य! तू अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित कर। अनादिकाल से अपने अज्ञान-दोष के कारण विकार में ही स्थित रहा है, तो अब मोक्षमार्ग में कैसे स्थित हो?—ऐसा किसी को संदेह हो तो आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्य! तू उलझ मत! अपने प्रज्ञा के दोष के कारण अनादि से विकार में मग्न होने पर भी अब भेदज्ञान द्वारा उससे आत्मा को हटाकर मोक्षमार्ग में स्थित किया जा सकता है। इसलिये हम कहते हैं कि हे भव्य! अपनी प्रज्ञा के गुण द्वारा अर्थात् भेदज्ञान के बल द्वारा अपने आत्मा को तू विकार से विमुख कर और मोक्षमार्ग में स्थापित कर।

आचार्यदेव अनेकानेक प्रकार से जीव-अजीव का भेदज्ञान समझाकर 28वें कलश में कहते हैं कि—अहा, ऐसी स्पष्ट जीव-अजीव की भिन्नता हमने बतलायी, तो अब किस जीव को तत्क्षण भेदज्ञान न होगा ? अब तो अवश्य भेदज्ञान होगा। इसलिये हे भव्य ! अब ऐसे भेदज्ञान के बल द्वारा अपने आत्मा को तू सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग में परिणमित कर !

निर्मल पर्याय में आत्मा को स्थापित कर—ऐसा कहो, अथवा आत्मा के स्वभाव में पर्याय को एकाग्र कर—ऐसा कहो,—दोनों का तात्पर्य समान है; द्रव्य-पर्याय की अभेद अनुभूति में 'यह पर्याय और यह द्रव्य' ऐसे विकल्प नहीं हैं, भेद नहीं हैं। जो ऐसी अनुभूति करे उसने अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित किया है।

देखो, यहाँ 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम को तू आत्मोन्मुख कर'—ऐसा कहने की अपेक्षा 'अपने आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थापित कर'—ऐसा कहा; अर्थात् रत्नत्रय की मोक्षमार्ग पर्यायरूप से अपने आत्मा को परिणमित करके उसमें ही आत्मा को स्थापित कर। प्रथम दूसरी गाथा में ऐसा कहा था कि—'दर्शन-ज्ञान-चारित्र में जो स्थित है, वह स्व-समय है'; उसी का यह उपदेश है।

कोई कहे : पर्याय तो अस्थिर है, उसमें आत्मा को स्थापित करने को क्यों कहते हो ? तो कहते हैं कि जहाँ द्रव्य-पर्याय के भेद का विकल्प छोड़कर अभेद अनुभूतिरूप हुआ, वहाँ आत्मा नई-नई सम्यक्त्वादि निर्मल पर्यायरूप ही परिणमित हुआ करता है, इसलिये वह आत्मा मोक्षमार्ग में ही निश्चल रहता है, इसलिये उसने मोक्षमार्ग पर्याय में अपने आत्मा को निश्चलरूप से स्थापित किया है।

हे भाई ! तू अभी तक परोन्मुख रहा—अब तू स्वोन्मुख हो ! पर में भी तू अपने अपराध से ही उन्मुख हुआ था, और अब स्व में तू अपने गुण से ही (भेदज्ञान के बल से) उन्मुख हो।

'जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत'

— देखो, यह स्वरूप की अज्ञानता, वह बन्धमार्ग है। और—

'समझाया वह पद नमूं श्री सद्गुरु भगवंत'

— गुरु उपदेश अनुसार स्वयं अपना स्वरूप समझना, वह मोक्षमार्ग है।

संसार में परिभ्रमण किया, वह अपने दोष से। दोष कितना ?—कि परद्रव्य को अपना माना इतना। स्व-पर के भेदज्ञानरूप प्रज्ञागुण द्वारा जीव स्वयं ही अपने को बंधमार्ग से हटाकर मोक्षमार्ग में स्थापित करता है। अनादिकाल से बन्धमार्ग में रहने पर भी जीव उससे हट सकता है, और कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ, ऐसे मोक्षमार्ग में अपने को स्थापित कर सकता है। इसलिये हे भाई! एक बार तो संसार का पड़ोसी होकर अंतर में आत्मा को देख! तुझे किसी अपूर्व आनंद का अनुभव होगा।

हे भव्य! एक बार अंतरोन्मुख हो... और दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वघर में ही अपने आत्मा का निवास करा! अपने आत्मा को निरंतर रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग में ही स्थापित कर, अन्य समस्त चिंताओं को दूर करके अपने चिदानंदस्वरूप एक को ही ध्येय बनाकर उसी की आराधना कर। समस्त जगत से उदास होकर आत्मा के मोक्षमार्ग में ही उत्साहित होकर उसी में आत्मा को स्थापित कर। उसी का बयान कर..1 अपने आत्मा को स्वतंत्ररूप से तू मोक्षमार्ग में स्थापित कर... अन्य किसी का उसमें आधार नहीं है। राग में एकमेक करके अपने आत्मा को न ध्या, परंतु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल पर्यायों में एकमेक करके आत्मा को ध्या! इसप्रकार निर्मल पर्याय के साथ आत्मा को अभेद करके कहा है।

अहा, आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्य! हमने अपने आत्मा को तो मोक्षमार्ग में परिणमित किया है और तू भी अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में परिणमित कर! पाँचवीं गाथा में भी कहा था कि मैं अपने समस्त निजवैभव के—आत्मवैभव से शुद्ध आत्मा का स्वरूप दर्शाता हूँ और तुम स्वानुभवप्रमाण से जानकर उसे प्रमाण करना।—सामनेवाले शिष्य को इतनी योग्यता देखकर आचार्यदेव ने यह बात कही है।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही स्वद्रव्य कहा है, और उसमें जो स्थित है, उसे 'स्वसमय' कहा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह ज्ञानचेतना है, उस ज्ञानचेतनारूप होकर तू मोक्षमार्ग का संचेतन कर, उसका अनुभवन कर, राग का अनुभव मत कर। आत्मस्वभाव का आश्रय करने पर जो निर्मल परिणाम होते हैं, उन निर्मल परिणामों में ही तू विहर, पर-द्रव्याश्रित होनेवाले ऐसे रागादि परिणाम में तू किंचित् न विहर... यही मोक्ष का मार्ग है। यही महावीर का मार्ग है।

— इसप्रकार आचार्यदेव ने भव्य जीवों का मोक्षमार्ग बतलाकर उसकी प्रेरणा की है।

महावीर के भक्तो, ऐसे मोक्षमार्ग में आओ!

आराध्य की आराधना—

आराध्य शुद्ध आत्मद्रव्य,

आराधना करनेवाली शुद्धपर्याय।

आराधना करनेवाला अपने आराध्य के साथ तन्मय न हो, तब तक सच्ची आराधना नहीं हो सकती। आराधक-पर्याय आराध्य-द्रव्य के साथ तद्रूप ही परिणमित होती है, तभी सच्ची आराधना होती है।

ज्ञान तो ज्ञानरूप ही रहता है

ज्ञान, राग को जानता है, परंतु उससे राग कहीं ज्ञान का कार्य नहीं है। ज्ञान राग को स्वकार्यरूप से नहीं जानता; इसलिये राग को जानने से ज्ञान में अशुद्धता की संभावना नहीं है।—ऐसा ही जीव का स्वभाव है। भाई, जानने में अशुद्धता कहाँ आ गई? ज्ञान तो परज्ञेयों से बाहर रहकर ही जानता है, और वे ज्ञेय तो ज्ञान से बाहर ही रहते हैं; ज्ञान और ज्ञेय एक-दूसरे में प्रविष्ट नहीं हो जाते, तथापि अज्ञानी निजज्ञान को भूलकर खेद-खिन्न होता है। स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य वह तो ज्ञान की निर्मलता है; उसे जाने तो आत्मा को जाना कहा जाये। स्व-परप्रकाशक ज्ञान राग को जानने से स्वयं रागरूप नहीं हो गया है; स्वयं तो ज्ञानरूप ही रहा है। ऐसे ज्ञान की प्रतीति वह वस्तु-स्वभाव की प्रतीति है।

वीर निर्वाण के 2500 वें महोत्सव पर

विद्यार्थियों के लिये सुंदर निबंध योजना

[समस्त जिज्ञासु साधर्मीजन उत्साह से भाग ले सकते हैं]

1- महावीर भगवान को पहिचानने से महान लाभ।

2- महावीर भगवान के मोक्षगमन का 2500वाँ वर्ष और आत्महित के लिये हमारा कर्तव्य।

भाई, महावीर प्रभु के मोक्षगमन का 2500 वाँ वर्ष चल रहा है। वर्तमान में वीरप्रभु का मार्ग भी चल रहा है। हमारा महान सौभाग्य है कि हम सबने वीरशासन में जन्म लिया है, वीरनाथ का सुंदर मार्ग हमें पूज्य स्वामीजी ने बतलाया है। और हर्ष की बात यह है कि प्रभु के मोक्षगमन का 2500 वाँ महोत्सव मनाने का सुअवसर वर्तमान में अपने जीवन में आया है। हम सब बड़े उत्साहपूर्वक धर्म की रुचि सहित, जैनशासन के प्रेमपूर्वक एवं साधर्मियों के प्रति वात्सल्य प्रदर्शित करके यह मंगल उत्सव मनायें। आप भी प्रेमपूर्वक उत्सव में भाग लीजिये।

निम्नलिखित दो विषयों पर आप निबंध लिखकर भेजें।

1- महावीर भगवान को पहिचानने से महान लाभ।

2- महावीर भगवान के मोक्षगमन का 2500 वाँ वर्ष और आत्महित के लिये हमारा कर्तव्य।

निबंध लिखनेवालों के लिये निम्नलिखित सूचनायें—

(1) आप एक विषय पर या दोनों विषयों पर निबंध लिख सकते हैं। निबंध गुजराती या हिन्दी किसी भी भाषा में लिख सकते हैं।

(2) विद्यार्थियों के अतिरिक्त कोई भी जिज्ञासु भाई-बहिन निबंध योजना में भाग ले सकते हैं, परंतु निबंध में भाग लेनेवाले को निम्नलिखित पाँच में से किन्हीं दो या अधिक नियमों का पालन पूरे वर्ष करना होगा—

1. प्रतिदिन भगवान के दर्शन करना (एक मील तक मंदिर न हो तो वहाँ प्रतिदिन 9 बार नमस्कार मंत्र का जाप करें।)

2. रात्रि-भोजन नहीं करें।

3. सिनेमा (चलचित्र) न देखें।

4. कन्दमूल न खायें।

5. प्रतिदिन 45 मिनिट धार्मिक साहित्य का स्वाध्याय करें।

उपरोक्त पाँच बातों में से कम से कम दो बातों का पालन करनेवाला ही इस निबंध योजना में सम्मिलित हो सकता है।

(3) निबंध कॉपी के चार या पाँच पेज जितने कागज पर एक ओर लिखें। और 15 जनवरी 1974 तक (संपादक आत्मधर्म, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) पिनकोड नं. 364250 इस परते पर भेज दें।)

(4) श्रेष्ठ निबंध लिखनेवाले प्रथम दो जिज्ञासुओं को चाँदी का 'महावीर चक्र' भेंट दिया जायेगा। तथा अन्य निबंध लेखकों में 250.00 रुपये पारितोषक रूप में वितरित किये जायेंगे। (अध्यक्ष महोदय की स्वीकृति सहित)

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

द्रव्य में तीन प्रकार की सत्ता

जैसे एक मोतीमाल तामें तीन भांत सेत,
[1]सेत हार सेत सूत सेतरूप [2]मनिया।
तैसे एक दर्वमाहिं सत्ता तीन भांत सोहै,
दर्वसत्ता गुनसत्ता पर्जसत्ता भनिया॥
दरव की सत्ता है अनंत धर्म सर्वगत,
गुनकी है एक ही धरमरूप गनिया।
परज की सत्ता क्रमधारी ऐसी भेदाभेद,
साधी मुनि वृन्द श्रुतसिंधु के [3]मथनिया॥61॥

1. श्वेत-सफेद। 2. गुरिया। 3. मथनेवाले।

महावीरस्वामी की परम्परा से चले आ रहे

परमागम का तात्पर्य

सर्वज्ञ परंपरा में दिगम्बर आचार्यों ने मोक्षमार्ग को बनाये रखा है, आज भी वह मार्ग परमागम में प्रसिद्ध है। महाभाग्य से अपने को भी वह मार्ग पूज्य स्वामीजी बतला रहे हैं। परमागम मंदिर का प्रतिष्ठा-महोत्सव निकट आ रही है—इस अवसर में भगवान महावीर की परम्परा से चले आ रहे परमागमों में बतलाया हुआ सत्यमार्ग सुनकर मुमुक्षुजन आनंदित होंगे।

[सूत्रप्राभृत के प्रवचनों से]

सर्वज्ञ की परंपरा से चले आ रहे वीतरागी जिनसूत्र वर्तमान में हमें महाभाग्य से प्राप्त हुए हैं; ऐसे जिनसूत्रों में से परमार्थमार्ग ढूंढ़ा जा सकेगा। सर्वज्ञ द्वारा कहे गये और वीतरागी संतों ने स्वानुभवपूर्वक जिसे बनाये रखा है ऐसे भावश्रुत का उपदेश इन समयसारादि जिनागमों में भरा है; उनसे सूत्र और अर्थ जानकर, परमार्थमार्ग का निश्चय करके आज भी भव्य जीव मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं।

अरे, जिनके पास सच्चे सूत्र ही नहीं हैं, जिनकी परंपरा सच्ची नहीं है, वीतरागी संतों की परंपरा को तोड़कर जो कल्पित मार्ग चले और कल्पित सूत्रों की रचना हुई उनमें मोक्षमार्ग का परमार्थ नहीं है, इसलिये ऐसे मार्ग में या ऐसे शास्त्र में से परमार्थ मोक्षमार्ग नहीं ढूंढ़ा जा सकता। भाई, अपने हित के लिये तू सच्चे मार्ग का निर्णय कर और वह सच्चा मार्ग बतलानेवाले वीतराग सर्वज्ञ देव-गुरु-शास्त्र की पहिचानकर उनकी परंपरा को स्वीकार कर!

देखो, महावीर भगवान के निर्वाण का 2500वाँ वर्ष लगा है और यह महावीर भगवान की परंपरा की बात आयी है। भगवान की परंपरा में हुए आचार्यों ने जो सूत्र और अर्थ कहे हैं, उनके द्वारा सच्चे मार्ग को जानकर भव्य जीव निर्वाण को साधते हैं।—ऐसा सत्यमार्ग कुन्दकुन्दाचार्यदेवादि दिगम्बर संतों ने बनाये रखा है, वह आज भी चल रहा है।

जिनसूत्र में किसी भी प्रकार से रागादिकभाव मिटाने का प्रयोजन है और रागरहित

चिदानंदतत्त्व के अनुभव का तात्पर्य है। ऐसे प्रयोजन की सिद्धि भगवान के कहे हुए परमागम की परम्परा में ही होती है। चैतन्यतत्त्व और रागादितत्त्व दोनों भिन्न है—ऐसा भेदज्ञान कराके राग को मिटाते हैं—इसप्रकार जीव परमागम का रहस्य जानकर, मोक्षमार्ग प्राप्त करता है।

भगवान के कहे हुए सर्व परमागम तो आज विद्यमान नहीं हैं, तो फिर परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसे साधा जाये?—ऐसे प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि—भगवान के कहे हुए परमागमों का अंश वर्तमान में भी विद्यमान है। भगवान के कहे हुए समस्त परमागम वर्तमान में भले ही विद्यमान न हों, परंतु उनके एक अंश में भी मोक्षमार्ग को बतलाने का सामर्थ्य है। भले ही शास्त्र थोड़े हैं, परंतु वे वीतरागी संतों की परंपरा से आये हैं, उनमें वीतरागदेव का कहा हुआ मूलमार्ग सुरक्षित है। अहो, दिगंबर आचार्यों ने मार्ग को सुरक्षित रखकर अथाग-अपार उपकार किया है।

महावीर भगवान की परंपरा से आये हुए परमागम की अत्यंत महिमा करते हुए षट्खंडागम में श्री वीरसेनस्वामी कहते हैं कि—मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को ऐसे वीतरागी परमागमों का अभ्यास करना चाहिये। भगवान महावीर का मोक्ष होने के पश्चात् बासठ वर्ष तक तो इस भरतक्षेत्र में केवलज्ञान की धारा अखंड चलती रही; पश्चात् केवलज्ञान में तो विच्छेद हुआ परंतु बारह अंगधारी पाँच श्रुतकेवली भगवंत हुए, उनके द्वारा श्रुतज्ञान की धारा सौ वर्ष तक अखंड चलती रही। पश्चात् श्रुतज्ञान भी क्रमशः घटने लगा; तथापि घटते-घटते उसका एक अंश आज भी वीतरागी संतों के प्रताप से हमें प्राप्त हुआ है... वह भी अमृत है; उसके अभ्यास हेतु प्रेरणा करते हुए वीरसेनस्वामी (षट्खण्डागम पुस्तक 9, पृष्ठ 133-134 में) कहते हैं कि—

''यह परमागम ग्रंथ त्रिकाल-विषयक समस्त पदार्थों का विषय करनेवाले प्रत्यक्ष अनंत केवलज्ञान के प्रभाव से प्रमाणीभूत होने के कारण और वीतरागी आचार्यों की परंपरा से आये होने से, प्रत्यक्ष तथा अनुमान से अविरुद्ध हैं, दृष्ट-इष्ट के विरोध से रहित हैं इसलिये प्रमाणभूत हैं। इसलिये मोक्ष के अभिलाषी भव्यजीवों को इन परमागमों का अभ्यास करना चाहिये।''

''कोई कहे कि—यह गंथ तो अल्प हैं (अर्थात् बारह अंग का श्रुतज्ञान घटते-घटते अत्यंत अल्प रहा है) इसलिये मोक्षरूपी कार्य को उत्पन्न करने में वह असमर्थ है।—तो

आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! ऐसा विचार न कर। क्योंकि अमृत के घड़े पीने का जो फल है वही फल अमृत का एक खोबा पीने में भी प्रापत होता है; उसीप्रकार सर्वज्ञदेव की परंपरा से आया हुआ वीतराग-परमागमरूपी अमृत भले ही कम हो, तथापि उसकेम अभ्यास से अपूर्व आत्मकल्याणरूपी मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो सकती है।'' इसलिये मोक्षार्थी जीवों को परमागम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

जिनसूत्र के भावश्रुत की अपार शक्ति

अहो, जिनसूत्र में कहे हुए भावश्रुत का जिसे ज्ञान है, वह जीव भवसमुद्र में नहीं डूबता। चार गति में स्थित जो कोई जीव आत्मा की पर्याय में श्रुतज्ञानरूपी सूत्र पिरो लेता है, वह जीव (सूत्र पिरोयी हुई सुई की भाँति) संसार में नहीं खो जाता, परंतु संसार-भ्रमण को छेदकर मोक्षदशा को प्राप्त करता है। अब पलट जाने पर भी ज्ञानधारा टूटे बिना वह अल्पकाल में मोक्ष को साध लेगा।—ऐसी जिनसूत्र के सम्यग्ज्ञान की महिमा है।

जिनसूत्र चैतन्य का पूर्ण स्वभाव बतलाते हैं। नवों तत्त्वों का ज्ञान कराके उसमें हेय-उपादेय क्या है उसकी पहिचान कराते हैं। उन्हें जानने से स्वसंवेदन द्वारा चैतन्यचमत्काररूप आत्मसत्ता प्रत्यक्ष अनुभवगोचर होती है। वह जीव संसार की गति में स्थित होने पर भी संसार में नहीं डूबता। चेतन्यतत्त्व अतीन्द्रिय है, इन्द्रियों से अदृश्य है, तथापि जिनसूत्र के ज्ञान द्वारा उसका स्वरूप जानने पर वह स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष होता है। श्रुतज्ञान की शक्ति कोई अद्भुत अपार है। भावश्रुतज्ञान स्वसन्मुख होकर आत्मा के स्वरूप का वेदन करता है, उस स्वसंवेदन में सर्व आगम का सार आ जाता है।

जिनागम में कहे हुए जीव-अजीवादि तत्त्वों का, और उनमें हेय-उपादेय तत्त्वों का सच्चा ज्ञान करनेवाले जीव सम्यग्दृष्टि हैं। भगवान के कहे हुए ऐसे जिनसूत्र आज दिगम्बर जैनाचार्यों की परंपरा से प्राप्त होते हैं। ऐसे जिनसूत्र को प्राप्त करके हे जीव! तू अपने आत्मा को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष कर ले। भगवान द्वारा कहा गया ज्ञान भव का नाशक है।

जिनकथित द्रव्यश्रुत का सच्चा ज्ञान तब होता है कि जब अंतर्मुख होकर शुद्ध आत्मतत्त्व को स्वसंवेदनगोचर करे।—ऐसा भावश्रुत की जैनशासन है। अहा, वीतरागवाणी की क्या अद्भुत रचना है! उसका ज्ञान करने से आनंद की तरंगें उछलती हैं।

श्री महावीराय नमः

सोनगढ़

ता.....

सद्धर्मवत्सल.....

अत्यंत धर्मोल्लासपूर्वक निवेदन है कि श्री दिगम्बर महावीर स्वामी 2500वें निर्वाणमहोत्सव के अंतर्गत सोनगढ़ में ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण श्री महावीर-कुन्दकुन्द परमागममंदिर का नव-निर्माण हो रहा है; तथा उसमें श्री 1008 भगवान महावीर प्रभु के दिगम्बर जिनबिम्ब को पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान करके, आत्मानुभवी परम उपकारी पूज्य श्री कानजीस्वामी की मंगलवर्धिनी छत्रछाया में फाल्गुन शुक्ला 5 तारीख 27-2-74 से फाल्गुन शुक्ला 13 तारीख 6-3-74 तक का महोत्सव मनाने का निर्णय किया गया है।

यह शुभ-प्रसंग सफलतापूर्वक और निर्विघ्नरूप से मनाने के लिये तथा तत्संबंधी सर्व प्रकार की सुंदर व्यवस्था करने की विचारणा के लिये एक सभा सोनगढ़ में मगसिर शुक्ला 13-14 शनि-रविवार, तारीख 8-12 तथा 9-12-73 के दिन रात्रि को 8.30 बजे दो दिन तक रखी गयी है, जिसमें आपकी उपस्थिति आवश्यक एवं अनिवार्य है। इसलिये आप समय से पूर्व पधारें ऐसी प्रार्थना है।

श्री जिनेन्द्र भगवंतों के दर्शन-पूजन तथा पूज्य स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का भी लाभ प्राप्त होगा। अतः आप अवश्य पधारें।

निवेदक—

नवनीतलाल सी. जवेरी (अध्यक्ष)

रामजी माणेकचन्द दोशी (भूतपूर्व अध्यक्ष)

बाबुभाई चुन्नीलाल महेता (संयोजक)

नेमीचंद पाटनी (संयोजक)

दीपावली के.... मंगल.... दीप

❀ भेदज्ञान द्वारा उदय को प्राप्त चैतन्य का मंगलमय सुनहरा प्रभाव आत्मा को आनंद प्रदान करता है और ज्ञानप्रकाश द्वारा मुक्तिमार्ग को प्रकाशित करता है।

❀ श्रीगुरु कहते हैं कि—हे जीवो! अनादि से मोहनिद्रा में सो रहे हो... अब तो जागो! जागृत होने का यह अवसर आया है... इसलिये जागो और चैतन्यमय निजपद की सँभाल करो।

❀ आराधक-धर्मात्मा के दर्शन से मुमुक्षु के हृदय में जैसी आनंद की ऊर्मियाँ उठती हैं, वैसी ऊर्मियाँ जगत के किसी अन्य पदार्थ में नहीं उठतीं।

❀ अपूर्व आत्मकल्याण की प्राप्ति वह सत्संग का फल है। सत्संग निजकल्याण के हेतु हैं, जगत को दिखाने के लिये नहीं। सच्चे सत्संग का फल तत्काल आता है।

❀ धर्मी को देखकर ऐसा लगता है कि वाह! धन्य इनका अवतार! अतीन्द्रिय आत्मा को स्वानुभव में लेकर यह आनंदरूप हुए हैं, जिनेश्वर के मार्ग में प्रयाण कर रहे हैं।

❀ अशरीरी अतीन्द्रिय आनंदमय चैतन्यजीवन जीनेवाले सिद्ध भगवंत जगत को संदेश देते हैं कि तुम भी भेदज्ञान करके ऐसा आनंदमय चैतन्य-जीवन जीओ!

❀ मात्र अनुमान जिसका स्वरूप नहीं है, परंतु प्रत्यक्षज्ञान जिसका स्वरूप है—ऐसे आत्मा को हे शिष्य! तू जान। राग से पार होकर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा अनुभव में ले।

❀ कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—मैं सर्वज्ञ परमात्मा सीमंधरनाथ के पास से यह संदेश लाया हूँ, उसे ग्रहण करके तुम ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा में उपयोग को लगाओ।

❀ सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप आत्मा का परिणमन वह परिनिर्वाण का मार्ग है। भगवंतों ने ऐसे मार्ग से निर्वाण प्राप्त किया, मैं भी उसी मार्ग पर जाता हूँ।

❀ अंतरस्वभाव में सन्मुखता कराके महाआनंद का वेदन करानेवाला हितोपदेश जिन संतों ने दिया, उन संतों के उपकार को मुमुक्षु जीव नहीं भूलते।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)